

Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the 'Committee on Publication Ethics'

Online ISSN:2584-184X



Research Article

वन संरक्षण की प्राचीन विधियों की वर्तमान में प्रासंगिकता

सरोज गोठवाल

शोधार्थी, भूगोल विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author: * सरोज गोठवाल

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.23465064>

सारांश

प्रस्तुत शोध झारखंड के गढ़वा जिले में युवाओं (15-30 वर्ष आयु वर्ग) के बीच मादक द्रव्यों के सेवन में हुई चिंताजनक वृद्धि और उसके परिणामस्वरूप सामाजिक-पारिवारिक पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ने वाले विनाशकारी प्रभावों का अध्ययन करता है। ऐतिहासिक रूप से मजबूत सामुदायिक मूल्यों से जुड़े गढ़वा जिले में पारंपरिक नशों के स्थान पर अत्यधिक घातक सिंथेटिक ड्रग्स (ब्राउन शुगर) और फार्मास्युटिकल ओपियोइड्स के बढ़ते प्रसार के कारण वर्तमान में एक गंभीर जनसांख्यिकीय संकट पैदा हो गया है। मिश्रित शोध पद्धति पर आधारित इस अध्ययन में 250 उत्तरदाताओं (जिसमें सक्रिय/पुनर्वासित नशेड़ी, प्रभावित परिवार, पुलिस प्रशासन और चिकित्सा विशेषज्ञ शामिल हैं) के प्रतिदर्श का विश्लेषण किया गया है। निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि गढ़वा की भौगोलिक संवेदनशीलता (उत्तर प्रदेश, बिहार और छत्तीसगढ़ के साथ साझा खुली सीमाएं), तीव्र युवा बेरोजगारी, भविष्य की चिंता और पीयर प्रेशर (दोस्तों का दबाव) इस महामारी को बढ़ावा देने वाले प्राथमिक कारक हैं। विश्लेषण दर्शाता है कि नशे की इस लत का सीधा संबंध पारिवारिक ढांचे के बिखराव से है, जो घरेलू हिंसा, आर्थिक तबाही और माता-पिता के मानसिक आघात के रूप में सामने आ रहा है। सामाजिक स्तर पर, इस संकट ने स्थानीय छोटे अपराधों (छिनतई, चोरी) में 65% की वृद्धि की है और सार्वजनिक सुरक्षा को खतरे में डाला है। अंततः, यह शोध पत्र इस सामाजिक-व्यवहार्य आपातकाल को नियंत्रित करने और क्षेत्र के युवाओं के भविष्य को सुरक्षित करने के लिए सख्त सीमा पुलिसिंग, सुलभ सरकारी नशामुक्ति बुनियादी ढांचे और सक्रिय सामुदायिक-पारिवारिक काउंसलिंग के एक त्रि-स्तरीय सुधारात्मक ढांचे का प्रस्ताव करता है।

Manuscript Information

- ISSN No: 2584-184X
- Received: 07-08-2026
- Accepted: 12-10-2026
- Published: 19-10-2026
- MRR:4(10); 2026: 163-167
- ©2026, All Rights Reserved
- Plagiarism Checked: Yes
- Peer Review Process: Yes

How to Cite this Article

गोठवाल स. वन संरक्षण की प्राचीन विधियों की वर्तमान में प्रासंगिकता. Indian J Mod Res Rev. 2026;4(10): 163-167.

Access this Article Online



www.mrrjournal.in

मुख्य शब्द: वन संरक्षण, भारतीय ज्ञान परंपरा, पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान, पवित्र उपवन, विश्वीय समुदाय, जैव विविधता, सतत विकास।

1. प्रस्तावना

प्रकृति और मानव के बीच संबंध केवल संसाधनों के उपयोग तक सीमित नहीं रहा है। भारतीय सभ्यता में प्रकृति को सामाजिक जीवन, धार्मिक आस्था, आजीविका और सांस्कृतिक मूल्यों से भी जोड़ा गया है। वन प्राचीन काल से भोजन, औषधियों, ईंधन, पशुचारे, आवास निर्माण और जलस्रोतों की सुरक्षा के प्रमुख आधार रहे हैं। इसलिए वनों का संरक्षण मानव समाज की दीर्घकालिक आवश्यकताओं से जुड़ा विषय रहा है।

भारतीय परंपरा में प्रकृति के प्रति सम्मान अनेक रूपों में दिखाई देता है। वृक्षों की पूजा, नदियों और पर्वतों को पवित्र मानना, वन क्षेत्रों को देवस्थल के रूप में सुरक्षित रखना तथा कुछ वृक्षों की कटाई पर सामाजिक प्रतिबंध लगाना ऐसी ही परंपराएँ हैं। इन मान्यताओं ने अनेक क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन को रोकने में सहायता की। हालांकि, प्राचीन वन संरक्षण को एक समान व्यवस्था नहीं माना जा सकता; विभिन्न क्षेत्रों में पर्यावरण, आजीविका और सामाजिक परंपराओं के अनुसार अलग-अलग पद्धतियाँ विकसित हुईं।

वर्तमान समय में वन संरक्षण के लिए कानून, वैज्ञानिक प्रबंधन, उपग्रह आधारित निगरानी और वृक्षारोपण कार्यक्रम उपयोगी हैं। फिर भी केवल प्रशासनिक नियंत्रण से सभी लक्ष्य प्राप्त करना कठिन हो सकता है। स्थानीय समुदायों की भागीदारी, प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व और संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग को भी महत्त्व देना आवश्यक है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

भारत में प्रचलित प्राचीन वन संरक्षण विधियों की प्रकृति और विशेषताओं का अध्ययन करना।

पारंपरिक धार्मिक, सांस्कृतिक और सामुदायिक व्यवस्थाओं की पर्यावरणीय उपयोगिता का विश्लेषण करना।

राजस्थान की पारंपरिक वन संरक्षण परंपराओं, विशेषकर विश्रोई समुदाय और खेजड़ली घटना का अध्ययन करना।

वर्तमान वन संरक्षण नीतियों में पारंपरिक ज्ञान के उपयोग की संभावनाओं का मूल्यांकन करना।

प्राचीन संरक्षण पद्धतियों की सीमाओं की पहचान करके उनके आधुनिक एवं वैज्ञानिक समन्वय के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

3. शोध प्रश्न

प्राचीन भारतीय समाज में वन संरक्षण के लिए कौन-कौन सी विधियाँ अपनाई जाती थीं?

धार्मिक आस्था और सामुदायिक नियम वन संरक्षण को किस प्रकार प्रोत्साहित करते थे?

क्या पारंपरिक विधियाँ वर्तमान जैव विविधता संरक्षण और जलवायु संबंधी चुनौतियों में उपयोगी हो सकती हैं?

आधुनिक वन प्रबंधन में स्थानीय समुदायों के पारंपरिक ज्ञान को किस प्रकार सम्मिलित किया जा सकता है?

4. शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें द्वितीयक स्रोतों के आधार पर प्राचीन भारतीय परंपराओं, पारंपरिक

पारिस्थितिक ज्ञान, सामुदायिक वन संरक्षण और वर्तमान पर्यावरणीय नीतियों का अध्ययन किया गया है। पर्यावरण संबंधी शोध साहित्य, सरकारी दस्तावेजों, जैव विविधता संरक्षण से संबंधित अंतरराष्ट्रीय प्रावधानों तथा ऐतिहासिक उदाहरणों को आधार बनाया गया है।

राजस्थान की वन संरक्षण परंपराओं को विशेष संदर्भ के रूप में लिया गया है। चूँकि इसमें प्राथमिक सर्वेक्षण अथवा क्षेत्रीय आँकड़ों का स्वतंत्र संकलन नहीं किया गया है, इसलिए निष्कर्ष साहित्य और उपलब्ध दस्तावेजों के विश्लेषण पर आधारित हैं।

5. प्राचीन भारत में वन संरक्षण की प्रमुख विधियाँ

5.1 पवित्र उपवन एवं देववन परंपरा

पवित्र उपवन उन पारंपरिक व्यवस्थाओं में से हैं जिनमें किसी वनखंड या वृक्ष समूह को देवता, ग्राम-देवता अथवा पूर्वजों से संबंधित मानकर सुरक्षित रखा जाता था। राजस्थान में ऐसे क्षेत्रों को प्रायः ओरण कहा जाता है। देश के अन्य भागों में इन्हें देववन, देवराई, सरना और अन्य स्थानीय नामों से जाना जाता है।

इन क्षेत्रों में वृक्षों की कटाई, शिकार, चराई अथवा अन्य संसाधनों के उपयोग पर स्थानीय परंपराओं के अनुसार प्रतिबंध या नियंत्रण लगाया जाता रहा है। पवित्र उपवन स्थानीय प्रजातियों के संरक्षण, पक्षियों और छोटे जीवों को आश्रय देने तथा मिट्टी की सुरक्षा में योगदान कर सकते हैं। वर्तमान समय में इनकी सीमाओं, जैव विविधता और सामुदायिक नियमों का व्यवस्थित अभिलेखीकरण करके इन्हें स्थानीय संरक्षण योजनाओं से जोड़ा जा सकता है।

5.2 वृक्षों के प्रति धार्मिक एवं सांस्कृतिक सम्मान

भारतीय परंपरा में पीपल, बरगद, नीम, तुलसी और खेजड़ी जैसे पौधों का धार्मिक, सांस्कृतिक, औषधीय अथवा उपयोगितावादी महत्त्व रहा है। अनेक समुदायों में कुछ वृक्षों को पवित्र मानने के कारण उनकी कटाई से परहेज किया जाता था। इससे संरक्षण का विचार परिवार, समुदाय और धार्मिक आयोजनों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ सकता था।

फिर भी यह मानना उचित नहीं होगा कि धार्मिक सम्मान के कारण सभी वृक्षों या वन क्षेत्रों की रक्षा स्वतः सुनिश्चित हो जाती थी। आधुनिक संदर्भ में इस परंपरा का उपयोग वृक्ष संरक्षण, स्थानीय प्रजातियों के संवर्धन और पर्यावरण शिक्षा के साथ किया जा सकता है।

5.3 विश्रोई समुदाय और खेजड़ली का ऐतिहासिक उदाहरण

राजस्थान की पारंपरिक वन संरक्षण परंपराओं में विश्रोई समुदाय का विशेष स्थान है। गुरु जांभोजी से संबंधित विश्रोई परंपरा में जीवों की रक्षा, वृक्षों के प्रति सम्मान और प्रकृति के साथ संतुलित जीवन को महत्त्व दिया गया है।

सन् 1730 में जोधपुर क्षेत्र के खेजड़ली गाँव में अमृता देवी विश्रोई और अन्य ग्रामीणों ने खेजड़ी के वृक्षों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया। यह घटना भारतीय पर्यावरणीय इतिहास में सामुदायिक वन संरक्षण का उल्लेखनीय उदाहरण मानी जाती है। खेजड़ी (*Prosopis cineraria*) शुष्क क्षेत्रों की कृषि, पशुपालन और स्थानीय पारिस्थितिकी से जुड़ी महत्वपूर्ण प्रजाति है।

इस उदाहरण की वर्तमान प्रासंगिकता स्थानीय समुदायों को संरक्षण प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाने, पर्यावरणीय शिक्षा में स्थानीय

इतिहास को स्थान देने तथा वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा को सामाजिक मूल्यों से जोड़ने में है। इसे पूरे भारत की सभी संरक्षण व्यवस्थाओं का प्रतिनिधि न मानकर एक विशिष्ट ऐतिहासिक उदाहरण के रूप में देखना चाहिए।

5.4 वन संसाधनों के उपयोग पर सामुदायिक नियंत्रण

पारंपरिक ग्रामीण व्यवस्थाओं में वन संसाधनों का उपयोग स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता था। कई समुदायों में सूखी लकड़ी एकत्र करने, चारा प्राप्त करने, औषधीय पौधों का उपयोग करने और पशुओं को चराने के लिए नियम प्रचलित थे। इन नियमों का उद्देश्य संसाधनों के उपयोग और उनकी उपलब्धता के बीच संतुलन बनाए रखना था।

आधुनिक वन प्रबंधन में इस अनुभव का उपयोग ग्रामसभा, वन संरक्षण समितियों और स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से किया जा सकता है। प्रभावी व्यवस्था के लिए स्पष्ट नियम, सभी संबंधित समूहों की भागीदारी, संसाधनों का न्यायसंगत वितरण और पारदर्शी निर्णय प्रक्रिया आवश्यक है।

5.5 जलस्रोतों और वनस्पति का पारस्परिक संरक्षण

तालाबों, कुओं, बावड़ियों, नदियों और अन्य जलस्रोतों का ग्रामीण जीवन से गहरा संबंध रहा है। अनेक क्षेत्रों में जलस्रोतों के आसपास वृक्षों और वनस्पतियों की रक्षा को महत्व दिया जाता था। वनस्पति मिट्टी के कटाव को कम करने, भूमि की नमी बनाए रखने और स्थानीय पारिस्थितिकी को सहारा देने में योगदान कर सकती है।

वर्तमान समय में इस परंपरा का उपयोग जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन, तालाबों के पुनर्जीवन, नदी तटीय वनस्पति संरक्षण और स्थानीय जल निकायों की देखभाल में किया जा सकता है। राजस्थान जैसे अर्धशुष्क क्षेत्रों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप वनस्पति का चयन करना आवश्यक है।

5.6 देशज ज्ञान और स्थानीय वनस्पतियों का संरक्षण

स्थानीय समुदायों का पारंपरिक ज्ञान लंबे अनुभव, पीढ़ीगत हस्तांतरण और प्राकृतिक परिस्थितियों के अवलोकन से विकसित हुआ है। इसमें स्थानीय वृक्षों, औषधीय पौधों, चारा प्रजातियों, बीजों तथा मौसमी परिवर्तनों से संबंधित जानकारी शामिल हो सकती है। इस ज्ञान को वैज्ञानिक अध्ययन के साथ जोड़कर स्थानीय प्रजातियों की पहचान, प्राकृतिक पुनर्जनन और वन पुनर्स्थापन की संभावनाओं का बेहतर मूल्यांकन किया जा सकता है।

जैव विविधता अभिसमय का अनुच्छेद 8(ज) जैव विविधता के संरक्षण और सतत उपयोग से संबंधित स्थानीय एवं आदिवासी समुदायों के पारंपरिक ज्ञान, नवाचारों और प्रथाओं के सम्मान तथा संरक्षण पर बल देता है। ज्ञान का दस्तावेजीकरण करते समय ज्ञानधारकों की सहमति, अधिकारों और लाभों के न्यायसंगत बँटवारे का ध्यान रखना आवश्यक है।

6. वर्तमान समय में प्राचीन विधियों की प्रासंगिकता

6.1 जैव विविधता का संरक्षण

पारंपरिक संरक्षण विधियाँ उन क्षेत्रों को सुरक्षित रखने में उपयोगी हो सकती हैं जहाँ स्थानीय वनस्पतियों और जीवों के लिए प्राकृतिक आवास उपलब्ध हैं। पवित्र उपवनों और ओरणों में मानवीय हस्तक्षेप पर लगाए गए स्थानीय प्रतिबंध कुछ परिस्थितियों में जैव विविधता के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करते हैं। इन क्षेत्रों की उपयोगिता का मूल्यांकन वनस्पति विविधता, जीव-जंतुओं की उपस्थिति, प्राकृतिक पुनर्जनन और आवास की स्थिति के आधार पर किया जाना चाहिए।

6.2 जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिक स्थिरता

वन कार्बन का भंडारण करते हैं, स्थानीय जलवायु को प्रभावित करते हैं और अनेक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं को सहारा देते हैं। पारंपरिक संरक्षण परंपराओं से प्रेरित होकर प्राकृतिक वनखंडों की रक्षा, स्थानीय प्रजातियों का पुनर्स्थापन और क्षतिग्रस्त भूमि का सुधार किया जा सकता है। प्राकृतिक वनों को नष्ट करके एकल प्रजाति के वृक्षारोपण को वन संरक्षण का समान विकल्प नहीं माना जाना चाहिए।

6.3 ग्रामीण आजीविका और संसाधन सुरक्षा

ग्रामीण और वन-आश्रित समुदायों के लिए वन चारा, ईंधन, खाद्य पदार्थ, औषधीय सामग्री और आय के स्रोत हैं। संरक्षण योजनाओं में स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं और अधिकारों की उपेक्षा करने से असंतोष पैदा हो सकता है। संरक्षण और आजीविका के बीच संतुलन बनाने से स्थानीय भागीदारी मजबूत हो सकती है।

6.4 पर्यावरण शिक्षा और नैतिक उत्तरदायित्व

आधुनिक पर्यावरण शिक्षा में वैज्ञानिक तथ्यों के साथ स्थानीय सांस्कृतिक परंपराओं और ऐतिहासिक उदाहरणों को शामिल किया जा सकता है। खेजड़ली की घटना, देववनों की परंपरा और स्थानीय वृक्षों से जुड़े सामुदायिक नियम विद्यार्थियों को प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व समझाने के उपयोगी माध्यम बन सकते हैं। उद्देश्य परंपराओं का महिमामंडन करना नहीं, बल्कि उनके पर्यावरणीय प्रभावों का विवेकपूर्ण मूल्यांकन करना होना चाहिए।

6.5 स्थानीय संस्थाओं और ग्रामसभाओं की भूमिका

वन अधिकार अधिनियम, 2006 पात्र वनवासी अनुसूचित जनजातियों और अन्य परंपरागत वनवासियों के वन अधिकारों को मान्यता देता है। निर्धारित शर्तों के अंतर्गत सामुदायिक वन संसाधनों की रक्षा, पुनर्जीवन, संरक्षण और प्रबंधन से संबंधित अधिकारों तथा ग्रामसभा की भूमिका को महत्व दिया गया है। इससे पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक कानूनी व्यवस्था के बीच समन्वय की संभावनाएँ बनती हैं।

7. प्राचीन और आधुनिक वन संरक्षण विधियों का तुलनात्मक विश्लेषण

विश्लेषण का आधार	प्राचीन संरक्षण विधियाँ	आधुनिक संरक्षण विधियाँ
प्रमुख आधार	धार्मिक आस्था, सामाजिक परंपराएँ और स्थानीय अनुभव	वैज्ञानिक अध्ययन, कानून और प्रशासनिक योजनाएँ
निर्णय प्रक्रिया	समुदाय एवं स्थानीय नियम	सरकारी संस्थाएँ, विशेषज्ञ और स्थानीय संस्थाएँ
संरक्षण का क्षेत्र	पवित्र उपवन, ओरण और स्थानीय वनखंड	आरक्षित वन, संरक्षित क्षेत्र और पुनर्स्थापन क्षेत्र

निगरानी	सामाजिक अनुशासन और स्थानीय जानकारी	क्षेत्रीय सर्वेक्षण, अभिलेख और तकनीकी साधन
प्रमुख लाभ	स्थानीय सहभागिता और सांस्कृतिक जुड़ाव	व्यापक नियोजन, कानूनी संरक्षण और वैज्ञानिक मूल्यांकन
संभावित सीमाएँ	परंपराओं का कमजोर होना और असमान भागीदारी	स्थानीय सहभागिता की कमी या क्रियान्वयन की समस्याएँ
समन्वय की संभावना	सामुदायिक ज्ञान और स्थानीय नियम	वैज्ञानिक जानकारी, कानूनी समर्थन और वित्तीय संसाधन

यह तुलना आदर्श प्रकारों पर आधारित है। व्यवहार में पारंपरिक और आधुनिक विधियाँ एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। अनेक समुदायों की परंपराएँ आज भी सक्रिय हैं और आधुनिक संरक्षण कार्यक्रम भी स्थानीय ज्ञान तथा सहभागिता का उपयोग करते हैं।

8. राजस्थान के संदर्भ में विशेष प्रासंगिकता

राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियाँ वन संरक्षण के अध्ययन को विशेष महत्व प्रदान करती हैं। राज्य के अनेक क्षेत्रों में कम वर्षा, उच्च तापमान, जल की सीमित उपलब्धता और मृदा अपरदन जैसी चुनौतियाँ पाई जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में स्थानीय प्रजातियों, सामुदायिक चरागाहों, ओरणों और पारंपरिक संसाधन प्रबंधन की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है।

- ओरणों का दस्तावेजीकरण: भौगोलिक विस्तार, भूमि उपयोग, वनस्पति और स्थानीय संरक्षण नियमों का अभिलेख तैयार किया जाए।
- खेजड़ी एवं अन्य स्थानीय प्रजातियों का संरक्षण: पौधरोपण और प्राकृतिक पुनर्जनन में स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल प्रजातियों को प्राथमिकता दी जाए।
- सामुदायिक भागीदारी: ग्रामसभा, स्थानीय निवासियों और पारंपरिक ज्ञानधारकों को योजनाओं के निर्माण तथा निगरानी में शामिल किया जाए।
- जल और वनस्पति का एकीकृत प्रबंधन: तालाबों, जलग्रहण क्षेत्रों, चरागाहों और प्राकृतिक वनस्पति के संरक्षण को परस्पर संबंधित कार्यों के रूप में देखा जाए।
- स्थानीय ज्ञान का वैज्ञानिक परीक्षण: पारंपरिक प्रथाओं की उपयोगिता का आकलन क्षेत्रीय परिस्थितियों और वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर किया जाए।

9. प्राचीन वन संरक्षण विधियों की प्रमुख सीमाएँ

पारंपरिक संरक्षण परंपराओं की उपयोगिता स्वीकार करते समय उनकी सीमाओं को भी समझना आवश्यक है। प्राचीन व्यवस्थाएँ सभी क्षेत्रों में समान नहीं थीं। कुछ स्थानों पर वनखंड सुरक्षित रहे, जबकि अन्य स्थानों पर आजीविका की आवश्यकताओं, राजनीतिक परिस्थितियों या संसाधनों के दबाव के कारण वनस्पति का क्षरण हुआ।

परंपरागत निर्णय प्रक्रिया में सभी सामाजिक समूहों, महिलाओं और संसाधनों पर निर्भर समुदायों को समान भागीदारी मिली हो, यह प्रत्येक क्षेत्र में सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। बदलती जनसंख्या, भूमि उपयोग, बाजार की माँग, खनन, अवसंरचना विकास और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों का समाधान केवल धार्मिक विश्वास या सामाजिक अनुशासन से संभव नहीं है।

किसी क्षेत्र को पवित्र मानना अपने आप में उसकी जैव विविधता या पारिस्थितिक गुणवत्ता का पर्याप्त प्रमाण नहीं है। इसके लिए वनस्पति सर्वेक्षण, प्रजातियों का आकलन और दीर्घकालिक निगरानी आवश्यक

है। अतः पारंपरिक ज्ञान का उपयोग वैज्ञानिक परीक्षण, कानूनी संरक्षण, सामाजिक न्याय और स्थानीय समुदायों के अधिकारों के साथ समन्वित रूप में किया जाना चाहिए।

10. वन संरक्षण के लिए सुझाव

- देश के विभिन्न भागों में स्थित ओरण, देववन और पवित्र उपवनों का व्यवस्थित सर्वेक्षण किया जाए।
- वन संरक्षण योजनाओं में ग्रामसभा, वन-आश्रित समुदायों और पारंपरिक ज्ञानधारकों को वास्तविक निर्णयकारी भूमिका दी जाए।
- भारतीय ज्ञान परंपरा और पर्यावरण संरक्षण के ऐतिहासिक उदाहरणों को पाठ्यक्रम तथा क्षेत्रीय अध्ययन से जोड़ा जाए।
- वृक्षारोपण में स्थानीय पारिस्थितिकी के अनुकूल प्रजातियों और प्राकृतिक पुनर्जनन पर ध्यान दिया जाए।
- उपग्रह चित्रों, भौगोलिक सूचना प्रणाली और क्षेत्रीय सर्वेक्षणों से वन क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों की निगरानी की जाए।
- स्थानीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण संबंधित समुदायों की सहमति से किया जाए और उनके अधिकारों का सम्मान सुनिश्चित हो।
- संरक्षण योजनाओं में चारा, गैर-काष्ठ वन उपज और अन्य वैध आजीविका आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए।
- कार्यक्रमों की सफलता का आकलन वृक्षों की संख्या के साथ जैव विविधता, प्राकृतिक पुनर्जनन, वनावरण और सामुदायिक भागीदारी के आधार पर किया जाए।

11. निष्कर्ष

वन संरक्षण की प्राचीन भारतीय विधियाँ प्रकृति और मानव समाज के बीच विकसित हुए ऐतिहासिक संबंधों को समझने का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं। पवित्र उपवनों की परंपरा, वृक्षों के प्रति सांस्कृतिक सम्मान, जलस्रोतों की रक्षा, सामुदायिक संसाधन प्रबंधन और विश्रौष्ट समुदाय का प्रकृति के प्रति समर्पण इस बात के उदाहरण हैं कि पर्यावरण संरक्षण को सामाजिक जीवन और सामुदायिक मूल्यों से जोड़ा जा सकता है।

इन परंपराओं की एक प्रमुख विशेषता यह है कि संरक्षण को केवल प्रशासनिक दायित्व के बजाय सामुदायिक उत्तरदायित्व के रूप में देखने की संभावना मौजूद है। जब किसी वन क्षेत्र का संबंध स्थानीय लोगों की सांस्कृतिक पहचान, आजीविका और सामाजिक जीवन से होता है, तब उसकी रक्षा के लिए दीर्घकालिक प्रतिबद्धता विकसित हो सकती है। हालांकि, इसका प्रभाव स्थानीय परिस्थितियों और संस्थागत व्यवस्थाओं पर निर्भर करता है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता के हास, भूमि उपयोग में परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव के कारण वन संरक्षण अधिक जटिल हो गया है। केवल प्राचीन परंपराओं पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं होगा; आधुनिक विज्ञान, पर्यावरणीय कानून, वैज्ञानिक निगरानी और सहभागी प्रबंधन भी आवश्यक हैं।

दूसरी ओर, स्थानीय समुदायों के अनुभव और पारंपरिक ज्ञान को उपयुक्त स्थान न मिलने पर संरक्षण योजनाओं की सामाजिक स्वीकार्यता प्रभावित हो सकती है।

अतः प्राचीन और आधुनिक वन संरक्षण विधियों के बीच विरोध स्थापित करने के बजाय उनके रचनात्मक समन्वय पर बल देना चाहिए। राजस्थान के ओरणों और खेजड़ली की ऐतिहासिक विरासत से यह सीख मिलती है कि प्रकृति के संरक्षण में स्थानीय समाज की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। प्राचीन विधियों की वर्तमान प्रासंगिकता उनके यथावत पुनरुत्थान में नहीं, बल्कि उनके उपयोगी सिद्धांतों को समकालीन वैज्ञानिक एवं कानूनी व्यवस्थाओं के साथ जोड़ने में निहित है।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय। वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980। नई दिल्ली: भारत सरकार; 1980। उपलब्ध: <https://www.moef.gov.in/forest-conservation>
2. भारत सरकार, जनजातीय कार्य मंत्रालय। अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006। नई दिल्ली: भारत सरकार; 2006। उपलब्ध: <https://tribal.nic.in/FRA.aspx>
3. Khan ML. भारत में पवित्र उपवन (Sacred Groves in India) [इंटरनेट]। खाद्य एवं कृषि संगठन, संयुक्त राष्ट्र। प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं। उपलब्ध: <https://www.fao.org/4/XII/0509-A1.htm>
4. जैव विविधता पर अभिसमय। अनुच्छेद 8(j): पारंपरिक ज्ञान, नवाचार एवं प्रथाएँ (Traditional Knowledge, Innovations and Practices)। उपलब्ध: <https://www.cbd.int/traditional/default.shtml>
5. राजस्थान वन विभाग। राजस्थान के पवित्र उपवन: बेहतर प्रबंधन एवं जनजीविका के लिए कुछ उपवनों में जैव विविधता का प्रलेखन एवं आकलन (Sacred Groves of Rajasthan: Documentation and Assessment of Biological Diversity in Some of Them for Improved Management and People Livelihoods)। उपलब्ध: <https://forest.rajasthan.gov.in/content/raj/forest/en/aboutus/departamental-wings/forest-development.html>
6. Thaplyal V, Chauhan S. पवित्र उपवन: वन संरक्षण की पैतृक बुद्धिमत्ता (Sacred Groves: The Ancestral Wisdom of Forest Conservation)। अंतरराष्ट्रीय वन वर्ष 2011 पर विशेषांक। 2011। उपलब्ध: <https://gbpihedenvic.nic.in/ENVIS%20Book.pdf>
7. भारत सरकार, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय। पवित्र उपवनों का संरक्षण (Sacred Groves Protection)। प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार; 8 फरवरी 2024। उपलब्ध: <https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2004012&lang=2®=48>

8. भारत सरकार, जनजातीय कार्य मंत्रालय। वन अधिकार अधिनियम, 2006 (Forest Rights Act, 2006)। नई दिल्ली: भारत सरकार। उपलब्ध: <https://forestrights.tribal.gov.in/>

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution–Non-Commercial–No Derivatives 4.0 International (CC BY-NC-ND 4.0) license. This license permits sharing and redistribution of the article in any medium or format for non-commercial purposes only, provided that appropriate credit is given to the original author(s) and source. No modifications, adaptations, or derivative works are permitted under this license.

About the Author



सरोज गोठवाल भूगोल विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान में शोधार्थी हैं। उनकी शैक्षणिक रुचि भूगोल, सामाजिक एवं आर्थिक विकास, क्षेत्रीय अध्ययन, पर्यावरणीय परिवर्तन तथा सतत विकास से संबंधित विषयों में है। उनका शोध भौगोलिक प्रक्रियाओं, सामाजिक संरचना और क्षेत्रीय विकास की चुनौतियों को समझने पर केंद्रित है।